भाद्रपद मास के पर्व

देवर्षि कलानाथ शास्त्री

(राष्ट्रपति सम्मानित), प्रधान सम्पादक ''भारती''संस्कृत मासिक
पीठाचार्य, भाषामीमांसा एवं शास्त्रशोध पीठ - विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
पूर्व अध्यक्ष - राजस्थान संस्कृत अकादमी
आधुनिक संस्कृत पीठ - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
पूर्व निदेशक - संस्कृत शिक्षा एवं भाषा विभाग, राजस्थान सरकार
सदस्य - संस्कृत आयोग, भारत सरकार

राजस्थान में ही नहीं समूचे देश में विशेषकर उत्तर भारत में वर्षा ऋतु के चार महीने विभिन्न धार्मिक परम्पराओं के केन्द्र बन गये हैं। यही वह समय होता है जब सभी धर्मों के तपस्वी साधु संन्यासी अपनी निरन्तर यात्राओं से विरत होकर एक ही स्थान पर चार मास तक रहते हैं और यहाँ के श्रद्धालुओं को धर्मोपदेश करते हैं। इसे चातुर्मास्य करना या चौमासा करना कहते हैं। इन चार मासों में इसी कारण अनेक धार्मिक रीति रिवाज, आचार परम्परायें और उत्सव समाहित हो गये हैं। इसका एक कारण तो प्राचीन भारत की इस सामाजिक स्थिति में तलाशा जा सकता है कि वर्षा से रास्ते रुक जाने और यात्राओं के प्रचुर और सशक्त साधन उपलब्ध न होने के कारण इन चार मासों में यात्रायें नहीं की जाती थीं। यायावः साधु संन्यासी एक जगह स्थिर हो जाते थे। तीर्थ यात्रायें बन्द हो जाती थीं तथा दूर जा कर गुरुओं से पढ़ने की स्थिति भी नहीं बनती थी।

इसी परम्परा में वेदकाल का वह वर्षाकालीन स्वाध्याय भी आता है, जिसे आज भी श्रावणी या उपाकर्म कहा जाता है। उस समय श्रावणी पूर्णिमा से वेद के पुनरनुशीलन का क्रम चलता था। इसी के साथ भाद्रपद मास में वेदकालीन ऋषि अपने तपोवनों में अपने शिष्यों के साथ अनेक प्रकार की तैयारियाँ करते थे जिनमें वर्ष भर के यज्ञकार्यों के लिए दर्भ तोड़कर लाना भी शामिल था क्योंकि वर्षा काल में कुशों और वनस्पतियों की सहज वृद्धि होती थी। प्रतीक के रूप में आज भी भाद्रपद की अमावस्या को यह कार्य किया जाता है जिसे कुशग्रहणी अमावस्या कहा जाता है। इस प्रकार वैदिक काल से ही चातुर्मास्य शताब्दियों तक यज्ञ और स्वाध्याय की परम्पराओं से जुड़ा रहा। आज भी उस परम्परा में शंकराचार्य आदि संन्यासी धर्मगुरू इन दिनों एक स्थान पर ही निवास करते हैं और धर्मोपदेश करते हैं। ये चौमासा कब शुरू होता है इस बारे में दो परम्परायें हैं। एक पम्परा आषाढ़ शुक्ल द्वादशी से कार्तिक शुक्ल

द्वादशी तक चातुर्मास्य मनाती है। दूसरी परम्परा आषाढ़ मास की संक्रान्ति से (वह कभी भी हो) कार्तिक मास की सूर्य संक्रान्ति तक चातुर्मास्य मनाती है। चार मास का चतुर्मास जैनाचार में और दो मासों का सनातन आयार में प्रचलित है या बताया जा चुका है।

भारत की श्रमण संस्कृति भी बहुत प्राचीन है। इसमें भी वर्ष के चार माहों में साधुओं और मुनियों का एक स्थान पर रह कर धर्मोपदेश करना बहुत प्राचीन परम्परा है। उसी परम्परा से आज भी भाद्रपद मास में जो चातुर्मास्य का मध्य है जैन धर्मावलम्बी पर्युषण पर्व मनाते है। दिगंबर आम्नाय में इसे दशलक्षण पर्व कहा जाता है। ये वर्ष भर के महत्वपूर्ण धार्मिक कृत्य है। दिगम्बर जैनों में इसकी पूर्ति के बाद क्षमापन पर्व भी मनाया जाता है। वर्षाकालीन इन मासों में धर्माचरण पर विशेष बल देने की परम्परा उपर्युक्त चातुर्मास्य की परम्परा का ही अंग प्रतीत होती है। महावीर ने गौतम गणधर को प्रथम धर्मदेशना (उपदेश) श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को दी थी। जिस प्रकार वर्षा के बादल जल बरसा कर हल्के और शुभ हो जाते है उसी प्रकार कषायों (कलुष) और विषयों (वासनाओं) का त्याग कर धर्मार्थी इन दिनों निर्मल होने का प्रयत्न करता है।

वैष्णव परम्परा के लिये भी श्रावण और भाद्रपद माहों का धार्मिक महत्व है। आज भी वैष्णव मन्दिरों में सावन के झूले और झाकियाँ तो भक्तिकालीन परम्परा के रूप में चले आ रहे हैं, किन्तु इससे पूर्व भी जब विष्णु की उपासना को व्यापकता दी जाने लगी थी, सनातन धार्मिक वैष्णव आचारों के प्रमुख कृत्य श्रावण और भाद्रपद माह में किये जाते थे। श्रावण से प्रारम्भ होकर ऐसे उत्सव दीपावली के बाद तक चलते थे। चाहे आज इस अवधि को 'देव सोने की' (देवताओं के सोते रहने की) अवधि बता कर मांगलिक कार्यों के मुहूर्त निकालने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता हो, किन्तु धार्मिक कार्यों का इसमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है, बल्कि उनकी विपुलता ही है। गणेश चतुर्थी और जन्माष्टमी के अलावा भाद्रपद शुक्ल पंचमी को ऋषि पंचमी के रूप में इसी माह में मनाया जाता है जिसमें वैदिक ऋषियों का स्मरण किया जाता है।

इसी परम्परा का अभिन्न अंग हैं अनन्तचतुर्दशी जो वैष्णव सम्प्रदाय का महत्वपूर्ण पर्व है। यह पर्व मूलतः इस धारणा के साथ शुरू हुआ होगा कि विष्णु ही महाविभूति (विश्व का पालन करने वाली सर्व व्यापक शक्ति) है, अनन्त है, अन्तर्यामी है और व्यापक है। वे नित्य-विभूति हैं, राम, कृष्ण आदि उन्ही की लीला-विभूति हैं। आचार की मर्यादा को नियंत्रित करने वाले प्राचीन वैष्णव सम्प्रदाय में (जो वासुदेव सम्प्रदाय से अलग था) विष्णु के इस अनन्त रूप को समस्त वैष्णवो के लिये वन्दनीय माना गया। वैष्णवों की यह धारणा है कि इन चार माहों में विष्णु क्षीर सागर में शेषनाग

की शैया पर शयन करते हैं और भाद्रपद शुक्ल द्वादशी को करवट लेते है जिस दिन विष्णु परिवर्तनोत्सव मनाया जाता है। सहस्रशीर्षा विष्णु की तरह सहस्रफण होने के कारण शेषनाग को भी अनन्त कहा जाने लगा था। अनन्त शयन (शेष शायी) भगवान विष्णु इस अवधि में एक जगह ही रहते हैं और आराम करते हुए भी भक्तों को संसार बंधन से मुक्त करते रहते हैं। इसी परम्परा में भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी को अनन्त विष्णु की पूजा करके वैष्णव लोग कच्चे सूत का चौदह गाँठो वाला रँगा हुआ एक डोरा अपने बाजू पर बाँधते हैं जो व्यापक वैष्णव परम्परा के अनुयायी होने का प्रतीक है। यह बंधन संसार के बंधनों से मुक्ति दिलाता है। वैष्णव परम्परा का यह उत्सव वर्षाकालीन चातुर्मास्य का प्रमुख व्रत है।

वैष्णव सम्प्रदायों में भक्तिकालीन धाराओं के आने के साथ जब विष्णु के गोपाल और वृन्दावन बिहारी रूप की माधुर्य-लक्षणा भक्ति प्रचलित हुई तो व्यापक और अनन्त विष्णु की मर्यादापरक पूजा उतनी सुप्रचलित नहीं रही जितनी मध्यकाल में थी, तथापि उसके प्रतीक के रूप में आज भी वैष्णवों में अनन्त का व्रत करने और डोरा बाँधने की यह परम्परा चली आ रही है।

जैसा पहले बताया जा चुका है जैन आम्नायों में भाद्रपद मास के इन पर्वो का सर्वाधिक महत्व है। जैन धर्म में शारीरिक वृत्तियों का अधिकाधिक संयम, आचार का कट्टर अनुशासन और सांसारिक बंधनों से पूर्ण विरक्ति आदि को प्रमुखता दी गयी है। इसी का अंग है उपवास (काषाय, विषय और आहार का त्याग) जिसका सिद्धान्त है शरीर का मोह त्याग कर उसकी वृत्तियों को नियंत्रित करना। उपवास तथा अन्न जल के त्याग की यह धारणा जैन आचार का महत्वपूर्ण अंग है। अन्न जल त्यागी साधुओं और श्रावकों को सर्वाधिक श्रद्धा का पात्र इसी दृष्टि से माना जाता है। कुछ विद्वानों का तो यह मानना है कि उपवास की अवधारणा जो सनातनी परम्पराओं में भी व्याप्त हो गयी है, श्रमण संस्कृति का प्रभाव है अन्यथा वैदिक संस्कृति में व्रत तो था, उपवास नहीं। जो भी हो, उपवास से सम्बन्धित आचारों का प्रमुख केन्द्र भाद्रपद मास ही जैन धर्म के दोनों आम्नायों (श्वेताम्बर और दिगम्बर) में माना जाता है। इसी मास में अधिक से अधिक आत्मसंयम कर तथा उपवास रख धार्मिक आचारों का पालन और उपदेशों का श्रवण जैन धर्मावलम्बियों के प्रमुख धार्मिक कृत्य है। दिगम्बर आम्नाय में इसे दशलक्षण पर्व कह कर भाद्रपद शुक्ल पंचमी से चतुर्दशी तक मनाया जाता है। इन दस दिनों में धर्म के दस प्रकारों या तत्वों का अर्थात् अध्यात्मोन्मुख क्षमा अर्थात् सहनशीलता, उत्तम मार्दव अर्थात् अनुशासन, तप, त्याग, आकिंचन्य अर्थात् अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य अर्थात् अध्ययन का मनन पालन और उपदेश श्रवण किया जाता है। इसके अनन्तर आश्विन कृष्ण द्वितीया को क्षमापन पर्व मनाया जाता है जब समाज के प्रत्येक व्यक्ति से मतभेद भुला कर किसी प्रतिकूल वचन या कार्य के लिये सबसे क्षमा माँगी जाती है।

श्वेताम्बर आम्नाय में इन उपवासों और आचारों को पर्यूषण कहा जाता है जिस का शब्दार्थ है उपासना। वे भाद्रपद कृष्ण एकादशी से शुक्ल चतुर्थी तक ये पर्व मनाते हैं। जिसमें अर्हन्तों, सिद्धों, आचार्यों, उपाध्यायों और सर्व साधुओं का पूजन, नमन तथा सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य के सिद्धान्तों का चिन्तन व पालन किया जाता है। इसके अनन्तर शुक्ल पंचमी को (जिसे सनातनी ऋषि पंचमी के रूप में मनाते हैं) संवत्सरी के रूप में मनाया जाता है। जो पर्यूषण पर्व की सम्पन्नता (सफल समाप्ति) का प्रतीक है। एक तरह से इस दिन श्रावक का आध्यात्मिक पुनर्जन्म या नया वर्ष शुरू हो जाता है। इस प्रकार जैनों के दोनों आम्नायों में भाद्रपद मास के इन धार्मिक पर्वों को वर्ष का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आचार पर्व माना गया है।

राजस्थान में जैन धर्म का विपुल प्रचार होने के कारण इन पर्वों की गूंज भाद्रपद मास के दूसरे पखवाड़े में बराबर सुनाई देती है। इसी प्रकार ब्रज की कृष्ण भक्ति परम्परा का पूरा प्रभाव होने के कारण श्रावण मास की झाकियों और भाद्रपद मास के व्रतों की परम्परा भी यहाँ वर्षों से चली आ रही है। यद्यपि वैदिक संस्कृति के स्वाध्यायों की परम्परा विलुप्त-सी हो गई प्रतीत होती है किन्तु वैष्णव सम्प्रदाय की अनन्त चतुर्दशी आज भी इस बात का प्रतीक है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश की त्रिमूर्ति के समन्वय को सनातन भारतीय परम्परा का परिचायक मानने वाला धार्मिक सनातनी वैष्णव शेषशायी पृथ्वीपालक विष्णु को आज भी अपनी चेतना में अविभाज्य रूप से व्याप्त मानता हुआ उस अन्तर्यामी अनन्त की पूजा करता है जो ब्रह्माण्ड के विराट् स्वरूप का प्रतीक है।